AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में स्त्री प्रश्नः पितसत्तात्मक समाज के संदर्भ में

ORIGINAL ARTICLE

Authors
शताक्षी त्रिपाठी
शोधार्थी

डॉ. शिप्रा द्विवेदी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय
रीवा, मध्यप्रदेश, भारत

शोध सार

साहित्य और समाज का संबंध बहुत पुराना है और उसका संबंध अनादिकाल से चला आ रहा है और दोनों का संबंध मनुष्य से है। मनुष्य समाज में रहने के साथ–साथ समाज को प्रभावित करता है और खुद भी प्रभावित होता है। साहित्यकार समाज का अंग है और समाज की परिस्थिति का प्रभाव उस पर पड़ता है। साहित्यकार समाज को साहित्य में बांधता है और साहित्य से समाज का मार्गदर्शन होता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि साहित्यकार युग दृष्टा और सृष्टा होता है। वह समाज की समस्याओं को देखता, सुनता और समझता है और उसी तरह साहित्य की सृष्टि करता है। स्त्री लेखन और उसके जीवन अनुभूत के बीच का फासला बहुत कम है। शायद यही वजह है कि स्त्री लेखन अपनी प्रारम्भ से ही समाज और परिवार द्वारा बनाए दायरों को अतिक्रमण करने की कोशिश करता रहा है। वो दायरे जो उसके अपने ने कभी सुरक्षा, कभी मर्यादा के नाम पर उसके लिए रचे हैं। इन दायरों की पहचान और समझ कि "समाज के विधानों की जंजीरों से जकड़ी हुई नारी जब तक अपने बंधन आप नहीं काटती– कोई शक्ति उसका सर्वनाश होने से नहीं बचा सकती।"[1] आज स्त्री मुक्ति का प्रश्न एक सबसे जटिल विमर्श है। इसका बीजारोपण मध्यकाल की संत कवयित्री मीरा ने किया था। राजघराने की कुलवधू ने धर्म द्वारा रचित जात–पात, पुराने आदर्श–मर्यादा के बंधनों को काटते हुए लोकाचार, लोकमत, लोकलाज से ऊपर उठकर स्त्री अस्मिता की पहचान की। आज का स्त्री प्रश्न उस बीज से ही पल्लवित–पुष्पित होकर वटवृक्ष बना है। आज के स्त्री लेखन में पितृसत्तात्मक निरंकुशता की गहन पड़ताल मिलती है। 'इदन्नमम', 'कठगुलाब', 'छिन्नमस्ता', 'महाभोज', 'चितकोबरा', 'अनित्य', 'उस तक', 'शेष प्रश्न', 'चाक', 'माई' और 'रेत समाधि' जैसे अनेक उपन्यास पितृसत्तात्मक निरंकुशता की कुत्सित सचाइयों को उजागर करते हैं। आदिवासियों, दलितों, सदियों से उत्पीड़ित जनजातियों के शोषण और संघर्ष को भी स्त्री लेखन ने आत्मसात किया है। पश्चिम की सीमोन द बुआ और वर्जीनिया वुल्फ ने पुरुष षड्यंत्रों को स्त्री की अनुकूलित मानसिकता से जोड़कर देखा था। हिंदी की स्त्री लेखकों ने इतिहास और धर्म के कई पन्ने खोले, हालांकि वह पर्याप्त नहीं है। धर्म और शरीयत की गुंजलक में कैद स्त्री अस्मिता को लेकर संरक्षक धर्मों पर लगातार प्रश्न की जरूरत है।

मुख्य शब्द

उपन्यास, पितृसत्ता, स्त्री, स्त्री–प्रश्न, भारतीय समाज, गीतांजलि श्री.

बहरहाल, यह स्त्री–कथा, जिसे विद्रोही, बागी, चलन से अलग, अपारंपरिक कुछ भी कहा जा सकता है जैसे, एक स्त्री आँख है जो सारी चीजों को देख और रच रही है। उनके उपन्यासों 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'खाली जगह', 'तिरोहित' और 'रेत समाधि' तथा उनके कहानी संग्रहों 'वैराग्य' और 'वहाँ हाथी रहते थे' में, उनके बहुविध लेखन में यह स्त्री अलग–अलग स्तरों पर और अपारंपरिक रूपों में मौजूद है। कहीं नियति के दुख और अवसाद झेलती हुई, कहीं मौन विद्रोह का रास्ता बनाती हुई।

हिंदी में गीतांजलि श्री अपने उपन्यास 'रेत समाधि' में यह रेखांकित करती हैं कि भारतीय भावना भारत की सरहद तक सीमित नहीं है, वह भारत की सरहद को पार कर अंतरराष्ट्रीय आधार ग्रहण करती है। इसके लिए अस्सी साल की उम्रवाली वृद्धा का इतिहास हमारे सामने खोला जाता है। इसमें हिंदू–मुसलमान भेदभाव की दीवार को तोड़ने की प्रक्रिया संजीदगी से उकेरी गई है।

गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' के अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड', जिसका अनुवाद डेजी रॉकवेल ने किया है, को इस साल का अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार प्राप्त हुआ है। निश्चित रूप से यह सम्मान भारतीय साहित्य का सम्मान है। 'रेत समाधि' में गीतांजली के पूर्व के उपन्यास 'माई' और एक कहानी 'मार्च, माँ और साकुरा' की परछाईं दिखाई पड़ जाती है। इस अर्थ में गीतांजली श्री विकासशील कथाकार हैं। उनकी कथाएँ निरंतर विकास का परिणाम जान पड़ती हैं।

गीतांजलि श्री ने भारतीय महिलाओं की कहानियों और उनके स्वभाव, मनोविज्ञान और संघर्ष को 'रेत समाधि' उपन्यास में अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। वे एक संवेदनशील कहानीकार हैं, जो घर–परिवार से लेकर समुदाय और क्षेत्र विशेष तक महिलाओं के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी मुद्दों पर गहरी पकड़ रखती हैं। भारतीय समाज के ये ऐतिहासिक मुद्दे जो महिलाओं को गहराई से प्रभावित करते हैं, गीतांजलि श्री के उपन्यासों में उठाए गए हैं और दो महिलाओं– माँ और बेटी की कहानी के माध्यम से हर परिस्थिति में प्रासंगिक लगते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है कि पुरुषों की दुनिया में एक महिला होने का क्या मतलब है और एक महिला होने के कारण उसे अपने जीवन में किन आपदाओं से गुजरना पड़ता है। यह महिलाओं की पसंद की स्वतंत्रता और एक सच्ची नारीवादी होने के बारे में सवाल उठाता है। यह दर्शाता है कि कैसे महिलाओं को पारिवारिक मूल्यों और भारतीय रीति–रिवाजों के नाम पर पितृसत्ता का सामना करना पड़ता है। यह 1947 में भारत के विभाजन के दौरान महिलाओं के उत्पीड़न, हिंसा और शोषण के मुद्दों का भी विश्लेषण करता है।

उपन्यास 'रेत समाधि' दो महिलाओं और एक औरत की मौत की कहानी है लेकिन इसमें इसके साथ और भी बहुत कुछ है। यह जिंदगी और मौत का आख्यान है। गौर करने पर पाते हैं कि इस कहानी में समय को लांघने की प्रत्याशा, लुप्त इतिहास को जी लेने की अभिलाषा, अनर्गल सीमाओं की निर्थकता, लिंगों और रिश्तों का दोआब तक शामिल है। गीतांजलि ने ठीक ही लिखा है– "महिलाएँ स्वयं कहानियाँ हैं।" उपन्यास में हम जैसे–जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे–वैसे स्त्री पात्र धीरे–धीरे क्षुद्र ग्रह से ब्रह्मांड बनती चली जाती हैं जैसे नदियों के मिलने से संगम होता है, वैसे ही कई कहानियों के मिलने से महागाथा तैयार होती चली जाती है लेकिन गीतांजलि श्री को असल में पहचानना चाहिए तो उनके स्त्री चरित्रों की मार्फत जो बिल्कुल पारंपरिक परिधान में रहती हैं, लेकिन उसमें अटती ही नहीं। वे लगभग हमेशा वहां से बाहर निकल आती हैं, कुछ ऐसा कर जाती हैं जिसकी दुनिया उनसे कल्पना नहीं करती। मसलन, नब्बे के दशक के आखिरी दिनों में ही आए उपन्यास 'तिरोहित' की चच्चो और ललना बेहद मामूली लगती स्त्रियाँ हैं लेकिन उन्हें देख रहा बिटवा जान रहा है कि कैसे इन दोनों स्त्रियों ने समाज को अपने ठेंगे पर रखा है और खुद को उससे अदृश्य भी रखा हुआ है। यह बात बार–बार दोहराई जा चुकी है कि यह उपन्यास हिंदी में किसी महिला द्वारा स्त्री समलैंगिकता पर लिखा संभवतः पहला उपन्यास है।

वैसे ही उनकी कहानी 'बेलपत्र' में हिंदू–मुसलमान के बीच हुई शादी के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन संघर्ष अंकित है। सचमुच इस संघर्ष का कारण पुरुष की पितृसत्तात्मक मानसिकता है। इस्लाम धर्म की फातिमा को हिंदू धर्मावलंबी पति के घर में हिंदू धर्म के अनुष्ठानों के पालन करने के लिए प्रेरित किया जाने लगा। शादी के पूर्व जब वे प्रेमी–प्रेमिका थे तो दोनों ने धर्म और संप्रदाय का घोर विरोध किया था, लेकिन शादी के बाद पति अपने धर्म के

आचरणों को बड़ी निष्ठा से पालन करने लगा। पति फातिमा को उसके अपने धर्म का अनुसरण करने की अनुमति नहीं देता, बल्कि उसका घोर विरोध करता है। लेखिका ने यह जाहिर किया है कि पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में अंतरधार्मिक अनुष्ठानों की गुंजाइश होती ही नहीं है।

समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जिस चेतनता से गीतांजलि श्री स्पर्श करती हैं यह परिवेश अनुकूल है। स्त्री–पुरुष संबंधों में बोल्डनेस को लक्षित करने की अपेक्षा गीतांजलि श्री ऐसे कथ्य का चयन करती हैं जहाँ स्त्रियाँ निर्णय लेने की स्वतंत्रता का उपयोग करती या इस स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होती दिखायी देती हैं। गीतांजलि श्री के साहित्य का कथ्य एक ऐसी स्त्री की वाणी को शब्द प्रदान करता है जो केवल आर्थिक या यौनिक स्वतंत्रता की अपेक्षा सोच की स्वतंत्रता की आकांक्षी है इसलिए यहाँ स्त्रियाँ बिना बोले या कम बोलकर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाती हैं। आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री की स्वतंत्रता के लिए अनिवार्य है, परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है सोच का परिवर्तन जिसके लिए 'माई' जैसे संघर्ष की आवश्यकता है जो बिना कुछ माँगे, बिना लड़े अपनी अगली पीढ़ी में स्वतंत्रता व समानता का बीजारोपण करती है न केवल रोपण करती है अपितु अनुकूल दृढ़ता से अंकुरों की रक्षा भी करती है। स्वयं झंझावातों को सहती 'माई' स्त्री की नयी परिभाषा गढ़ती है। स्त्री जो हमजात सास के तानों को भी सहर्ष स्वीकार करती है। सामन्ती सोच वाले ससुर व पति की प्रत्येक आज्ञा का पालन करती है परन्तु आने वाली पीढ़ी को सामंती सोच से मुक्त कराती है। स्त्री स्वतंत्रता का अभिप्राय भी निर्णय की स्वतंत्रता ही है। निर्णय की स्वतंत्रता की यह लड़ाई कभी समाज द्वारा दुत्कार भी दी जाती है। 'माई' उपन्यास तो निश्चित तौर पर स्त्री की दुर्बलता के पीछे छिपी दृढ़ता व निर्णय शक्ति को उजागर करता है।

कुछ इसी तरह की परिस्थिति 'माई' उपन्यास में भी सामने आती है। माई का चरित्र कुशल गृहणी का चरित्र है जिसे इस तरह दिखाया गया है– ''माई का ऐसा था कि वह हमेशा झुकी रहती थी और बोलती कम थी। जब हम् जागते तो वह नहाई–धोई, साफ धोती पहने, रसाईघर में पराठे सेंकती होती मटर के, सत्तू के, दाल के, आलू के, गोभी के, मूली के। दादा और दादी नाश्ता नहीं, सीधे भोजन ही करते थे। जो उनके लिए बनता उसी में से हमारे स्कूल का टिफिन तैयार होता लेकिन बाबू सुबह कुछ हल्का लेते।''[2] 'माई' अपनी जिंदगी में उस दर्द को झेलती है, जो स्त्री के जीवन के साथ जुड़े हैं लेकिन वह अपनी बेटी के भविष्य को लेकर चिन्तित है और प्रयत्नशील भी है। यह जागृति, मातृत्व के गुण के साथ सामाजिक विवेक के साथ अपनी जिम्मेदारियों को ठीक ढंग से निभाने का परिणाम है।

गीतांजलि श्री के उपन्यासों के पात्र सामान्य भारतीय स्त्री के चरित्र और उनके संघर्ष को नकारते नहीं हैं अपितु उन सभी समझौता की हुई स्त्रियों के त्याग के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हैं साथ ही अपनी नई पहचान के साथ भी सामने आते हैं। 'माई' उपन्यास में आया 'सुनैना' का चरित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो उठता है। वह कहती है– ''गलत–गलत, मैं समझा नहीं पा रही थी, माई मिटी नहीं थी, हमने उसे मिटा रखा था। मुझे माई नहीं बनना, मैं चाहूँ भी तो माई नहीं बन सकती, वह सिफत नहीं मुझमें... मुझे उसकी तरह दे–देके देने को ही लेना नहीं बनाना है, मुझे उसकी तरह शहादत में मकसद नहीं पाना है, मुझे उसकी तरह नम्रता और उदारता को अपराध नहीं बना देना है, उसके इतिहास से लड़ना है, उसे नकारना है, उसके बाद दूंगी, लेने के साथ दूंगी, पर तब तक लडूंगी, उसी से लडूंगी, माई जो शाश्वत है, जो मुझमें है, जो आग में, राख में, हमेशा रहेगी, जिसके आगे मैं शीश नवाती हूँ, उससे लडूंगी।''[3]

कामकाजी महिलाओं के सामने सार्थकता का प्रश्न पुरुषों के मुकाबले दुहरे स्तर पर खड़ा हो गया। इन महिलाओं को पुरुषों के समान कार्यक्षेत्र में भी कार्य कुशलता प्रमाणित करनी है और परिवार के सफल संचालन का पूरा आंकलन भी इन्हीं के व्यक्तित्व के माध्यम से किया जाता है। इस दोहरी परीक्षा के बावजूद स्त्री के ऊपर आज भी वे सभी बंधन उसी तरह लागू हैं, जैसे पहले से चले आ रहे हैं। गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' की पात्र 'श्रुति' के माध्यम से स्त्रियों के लिए अवसर की समानता के खोखलेपन को दिखाया है– ''बताइए, क्यों औरतों में मर्दों के मुकाबले ज्यादा है, हिस्टीरिया का मर्ज? इसलिए कि उन्हें चुनने बढ़ने की कम आजादी ने अलग ढंग से कुंठित कर दिया है। आदमी वही सब आसानी से पा रहा है। मैं मोटे तौर पर बात कर

रही हूँ, बारीकियों को अभी नहीं छेड़ रही। जब बिना लड़े मिल रहा है तो आदमी संभ्रांत शांतिप्रिय दिख लेता है। औरत को हर बार लड़ना पड़ता है। तो विवृत करार दी जाती है।''[4]

गीतांजलि श्री प्रगति एवं परिवर्तन के मध्य शक्तिशाली वर्ग की मनमानी के अनुसार अपने हितों के लिए बनाई और बदली जाने वाली नैतिकता पर प्रहार करती हैं और दिखाती है कि ऊपरी तौर से स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर कितने ही विमर्श क्यों न हो जाएँ लेकिन बुनियादी तौर पर तस्वीर अभी भी नहीं बदली है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री मुक्ति की आँधी में गीतांजलि श्री का व्यक्तित्व उन परम्परागत मूल्यों को दरकिनार नहीं कर देता जो सदैव से स्त्री के व्यक्तित्व का सबसे सबल पक्ष रहा है उदाहरण के लिए 'खाली जगह' उपन्यास में चित्रित माँ का वह चरित्र जो बम धमाके में अपने बेटे की मृत्यु हो जाने के कारण अपरिचित अनाथ बच्चे को पालती है और अपनी सारी ममता लुटा डालती है। वह गोद लिया बच्चा अपनी माँ के बारे में कहता है– ''ऐसा होता है। माँ के गले से कोई शब्द निकलता है जो इंसानों की बनाई किसी भाषा का नहीं। मुझे गिराती नहीं है माँ, कस के गोद में चिपटाती है कि घुमौरियां दबने से टीस जाती है और क्यू को तेजी से लांघ जाती है, सीधे मंच पर जा चढ़ने। मुझे लिए हुए वह घुटनों पर बैठ गई है और अपने बेटे पर झुकी फूल और मालाएँ उससे अलग फेंकती जा रही है। मंच फूलों की झील बन गया है, मैं बन्दर की तरह मों से चिपका हुआ है और उसने फूलों के तल में से डब्बे को ऊपर खींच लिया है।''[5]

गीतांजलि श्री ने वर्तमान सामाजिक संरचना के भीतर शारीरिक स्वतंत्रता के प्रश्न को लेकर भी लेखन किया है। 'तिरोहित' उपन्यास इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। एक व्यक्ति जो धन कमाने की होड़ के पीछे अपनी पत्नी की उपेक्षा करता रहता है और बाद में पुनः उससे लगाव की अपेक्षा करता है। इस प्रक्रिया में वह स्त्री बहुत पहले ही मिट चकी होती है। दोनों के बीच के सूत्र भी टूट चुके होते हैं पर सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि अभी भी पति–पत्नी के रूप में जुड़े हुए हैं। ऐसा व्यवस्था में स्त्री की अपनी इच्छाओं के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता लेकिन 'तिरोहित' उपन्यास की स्त्री पात्र अलग व्यक्तित्व के साथ सामने आती है। उपन्यास में संकीर्ण मानसिकता का उत्तर देते हुए 'ललना' दो–टूक शब्दों में कहती है कि– ''वह हंसी बिटवा, तुम कभी नहीं हंसोगे। वह हँसी हँसने के लिए बिटवा तुम्हें लड़की होना पड़ेगा। लड़की जो हमेशा नंगी होती है। इतनी नंगी कि उसे ढेरों कपड़े चढ़ाने पड़ते हैं, परत–पे–परत, परतों–पे–परते और वे सारी बुर्के से ढकनी पड़ती हैं। वह नंगी लडकी जब हँसती है तब निकलती है वैसी प्यारी हँसी।''[6]

निष्कर्ष

अतः इस प्रकार कह सकते है कि गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यासों में पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री जीवन के तमाम पहलुओं को शामिल किया है और उनके लेखन की परिधि बहुआयामी है। बदलते समाज में कामकाजी स्त्रियों से को लेकर शारीरिक स्वतंत्रता के प्रश्न के साथ–साथ स्त्री व्यक्तित्व के सकारात्मक पहलुओं को उभारने का प्रयास गीतांजलि श्री ने अपने लेखन में बखूबी किया है। सामाजिक संरचना के विरोधाभासों, स्त्री जीवन की विडम्बनाओं और नई स्त्री में मुक्ति की सम्भावनाओं को रेखांकित करते हुए गीतांजलि श्री ने सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक चित्रण भी किया है।

संदर्भ सूची

1. सिन्हा, सुमित्रा कुमारी (2021) *व्यक्तित्व की भूखः अंतर्वस्तु और मूल्यांकन,* इग्नू, नई दिल्ली, पृ. 33।
2. गीतांजलि श्री, (2012) *माई,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 33।
3. गीतांजलि श्री, (2012) *माई,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 167।
4. गीतांजलि श्री, (2016) *हमारा शहर उस बरस,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 111।
5. गीतांजलि श्री, (2010) *खाली जगह,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 3।
6. गीतांजलि श्री, (2010) *तिरोहित,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 56।

––==00==––